*ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA*
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292,REG.No.:561/2013-14 Vol.-I, No.-1, PP-59-62, YEAR 2013

# अजातिवाद की तार्किक प्रस्थापना

❑ **डॉ0 मनीष पाण्डेय**

प्राचीन अद्वैतवाद का पूर्णतया विकसित स्वरूप गौडपादाचार्य–दर्शन में ही उपलब्ध होता है। शंकराचार्य के परमगुरु आचार्य गौडपाद के दर्शन की विधि माध्यमिकों जैसी है, परन्तु उनकी विषय–सामग्री विज्ञानवादियों जैसी है। गौडपाद के दर्शन के दो प्रमुख उद्देश्य थे, प्रथम उपनिषद के अनुयायियों को वेदान्त–दर्शन का औचित्य दिखलाना एवं द्वितीय, बौद्धों में वेदान्त का प्रचार करना। अपने उदार विचारों के कारण गौडपाद ने दोनों दर्शनों के सम्मिश्रण द्वारा अद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। माण्डूक्योपनिषद् पर गौडपाद द्वारा रची हुई माण्डूक्यकारिकाएँ अद्वैत वेदान्त की आधारशिला मानी गई हैं। इस ग्रन्थ को आगम शास्त्र, माण्डूक्यवार्तिक और वेदान्तमूल इत्यादि अनेक नामों द्वारा अभिहित किया जाता है। सभी कारिकाएँ चार प्रकरणों में विभक्त हैं – आगम, वैतथ्य, अद्वैत और अलातशान्ति।

माण्डूक्यकारिका के सम्बन्ध में दो विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् सम्पूर्ण माण्डूक्यकारिका को एक ही ग्रन्थ मानते हैं जिसके चार महत्त्वपूर्ण भाग हैं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार, उपर्युक्त चार प्रकरण एक ही पुस्तक के भाग नहीं हैं, वरन् वे चार स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आचार्य गौडपाद का अजातिवाद का प्रसिद्ध सिद्धान्त माण्डूक्यकारिका के अद्वैत प्रकरण में वर्णित है। अद्वैतवाद के समर्थन में अजातिवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए आचार्य का कथन है कि "परमार्थतः न किसी जीव की उत्पत्ति होती है और न कोई जीव की उत्पत्ति का कारण है । वस्तुतः एकमाात्र ब्रह्म ही सत्य है, जिसमें कुछ भी उत्पन्न नहीं होता ।1''

दर्शनशास्त्र में जगत् या सृष्टि के सम्बन्ध में तीन प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हैं–

1. अजातिवाद– जिसके अनुसार, जगत् न कभी था, न है और न होगा। जगत् की सत्ता या स्वरूप अलीक है, मिथ्या है।

2. दृष्टिसृष्टिवाद– प्रकृत सिद्धान्त के अनुसार, दृष्टि के क्षण में ही सृष्टि होती है। दृष्टि हटा लेने पर सृष्टि समाप्त हो जाती है। आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक बर्कले का ''सत्यता दृष्टता है'';श्म मेज चमतबपचपद्धसिद्धान्त इससे पर्याप्त मिलता जुलता है। इसमें जगत् को 'प्रातिभासिक' माना जाता है। स्वप्न, दृष्टिसृष्टिवाद का एक उत्तम उदाहरण है। समकालिक पाश्चात्य दर्शन की भाषा में इसे ''प्रत्यक्ष का क्रियाविशेषण सिद्धान्त'' (Adverbial theory of Perception)कहते हैं।

3. सृष्टिदृष्टिवाद–इस सिद्धान्त के अनुसार, जगत् मनुष्यसृष्ट न होकर ईश्वर द्वारा रचित है। ईश्वर सर्वप्रथम जगत् की सृष्टि करता है और तत्पश्चात् हम उस पर दृष्टि डालते हैं अर्थात् देख सकने में सक्षम हो पाते हैं। पाश्चात्य दर्शन में इसे ''वस्तुनिष्ठ विज्ञानवाद'';व्इरमबजपअम प्कमंसपेउद्धकी संज्ञा दी गयी है।

किन्तु यहां ध्यातव्य है कि पूर्वोक्त दृष्टिकोणों में ऊपर से देखने पर भले ही विरोध दिखाई पड़ रहा हो, पर मूलतः उनमें कोई विरोध नहीं हैं। तीनों सिद्धान्तों के अनुसार भ्रम–वस्तु न तो पहले थी, न अब है और न भविष्य में ही रहेगी। तीनों काल में वह बिलकुल असत् है।1

अजातिवाद कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन ने मूलमाध्यमिककारिका में अजातिवाद को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–''किसी वस्तु की उत्पत्ति न तो स्वयं से, न तो किसी अन्य से, न तो दोनों से और न तो दोनों के निषेध से ही हो सकती है।''2 तथ्य को और अधिक पुष्ट करने के लिए नागार्जुन पुनः कहते हैं, ''जो न आदि में है और न अन्त में है, वह मध्य में किस प्रकार हो सकता है ?''3 वास्तव में बौद्ध दर्शन में अजातिवाद की उत्पत्ति प्रतीत्यसमुत्पादवाद से हुई है। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' ( प्रतीति+असमुत्पाद) सिद्धान्त के अनुसार, उत्पत्ति की प्रतीति तो होती है, पर वस्तुतः कोई उत्पत्ति नहीं होती। अतः, बौद्ध दर्शन में अजातिवाद का एक मान्य सिद्धान्त रहा है। मुण्डकोपनिषद् में भी अजातिवाद

असिसटेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमो0 पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0)–225001 भारत

सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गई है। तत्व के विषय में कहा गया है, ''वह बाहर और भीतर दोनों ओर से अज है ।''4 योगवासिष्ठ में भी कई स्थलों पर अजातिवाद के विषय में उद्धरण मिलते हैं : ''जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है, न था और न होगा ही ।''5 एक अन्य स्थल पर वसिष्ठ राम से कहते हैं, "राम ! जगत् न था, न है और न होगा।"6 अस्तु, माण्डूक्यकारिका का तो अजातिवाद प्रमुख सिद्धान्त ही है– "भूतं न जायते किंचिदभूतं नैव जायते..... ।"7

माण्डूक्यकारिका में गौडपाद ने तर्क के आधार पर अजातिवाद को सिद्ध करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार नैयायिक सांख्य के "सत्कार्यवाद" का खण्डन करते हैं और सांख्यवादी न्याय के "असत्कार्यवाद" का खण्डन करते हैं। इस पारस्परिक खण्डन के द्वारा वे अजातिवाद का ही पोषण करते हैं– "कोई भी विद्यमान वस्तु इसलिए उत्पन्न नहीं होती क्योंकि वह आत्मा के समान पहले से ही विद्यमान है।" इस प्रकार असत्कार्यवादी नैयायिक, सत्कार्यवादी सांख्य पक्ष का खण्डन करता है। उसी प्रकार शशश्रृंग के समान अविद्यमान वस्तु का जन्म नहीं होता क्योंकि वह सदा अविद्यमान ही है। ऐसा कहते हुए सत्कार्यवादी सांख्य, असत्कार्यवादी वैशेषिक पक्ष का खण्डन करते हैं। इस प्रकार वे परस्पर विरुद्ध होते हुए भी अजातिवाद को ही प्रकाशित करते हैं।

पुनः, गौडपाद ने अजातिवाद की सिद्धि के लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण तर्क दिया है कि "स्वयं से या दूसरे से या दोनों से सत्, असत् और सदसद् उभयरूप वाली कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं होती" ।8 न घट से वही घट उत्पन्न हो सकता है और न घट से पट ही उत्पन्न हो सकता है। यदि कोई कहे कि मिट्टी से घट और पिता से पुत्र उत्पन्न होता देखा गया है तो इसके उत्तर में वे कहते हैं कि यह प्रतीति केवल अविवेकियों को ही होती है, विवेकियों को नहीं। श्रुति कहती है, "घटपुत्रादि रूप वस्तु शब्द मात्र ही हैं, वास्तव में मिट्टी या पिता ही एक मात्र सत्य है।"9

कुछ लोग यह कहते हैं कि संसार में हमें हेतु–फल का प्रतिदिन प्रत्यक्ष होता है। हम संसार में विभिन्न हेतुओं से फल की उत्पत्ति होते हुए देखते हैं। ऐसी स्थिति में हम कैसे कह सकते हैं कि संसार अजातिवाद से शासित है। इसके उत्तर में गौडपाद कहते हैं कि हेतु और फल के "अनादित्व" से इन दोनों की अनुत्पत्ति माननी पड़ेगी। कारणरहित पदार्थ का जन्म होते नहीं देखा गया है। आदिरहित फल से हेतु उत्पन्न नहीं होता। जिसका कभी जन्म नहीं हुआ, ऐसे अनादि फल–रूप शरीर से धर्माधर्म–रूप हेतु का जन्म अभीष्ट नहीं हो सकता। न तो ऐसा ही हो सकता है कि आदि रहित अजन्मा हेतु से बिना किसी निमित्त के ही स्वभावतः फल उत्पन्न हो जाता है। अतः हेतु और फल का अनादित्व मानने वाले को उनकी अनुत्पत्ति माननी ही पड़ेगी। लोक में जिसका कारण नहीं होता, उसका जन्म भी नहीं होता।10 सकारण पदार्थ का ही जन्म सम्भव होता है।

कारण और कार्य में तादात्म्य–सम्बन्ध के सम्पोषक सांख्य दर्शन के अनुसार , प्रधान या प्रकृति से महत्, अहंकार और मन इत्यादि उत्पन्न होते हैं। पर सांख्य के इस सिद्धान्त में कई तार्किक दोष दिखाई पड़ते हैं। यदि अजन्मा प्रकृति से परिणाम द्वारा अन्य तत्त्व उत्पन्न होते हैं और कारण–कार्य में तादात्म्य पाया जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि कारण, कार्य के समान अनित्य व कार्य, कारण के समान नित्य हो जायगा जिसे सांख्य भी स्वीकार नहीं कर सकता। गौडपाद कहते हैं, कि जिसके मत में कारण ही कार्य है, उसमें कारणरूपा प्रकृति अन्य तत्त्वों को उत्पन्न करती है। ऐसी स्थिति में जन्म लेने वाला अज कैसे होगा और विकार वाला नित्य कैसे कहा जायगा ? –

कारणाद्यनन्यत्वमतः कार्यमजं यदि।
जायमानाद्धि वै कार्यात्कारणं ते कथं ध्रुवम्।।
(माण्डूक्यकारिका, 4/12)

उपर्युक्त कारिका पर भाष्य करते हुए आचार्य शंकर का कथन है, कि यदि नित्य कारण अनित्य कार्य को उत्पन्न करता है तो यह उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार मुर्गी का एक भाग पकाया जाय और दूसरा भाग प्रसव के लिए सुरक्षित रखा जाय।11

अजातिवाद के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करते हुए पुनः आचार्य कहते हैं, कि अनादि वस्तु से कार्य के उत्पन्न होने का दृष्टान्त नहीं मिलता। इसके विपरीत, यदि किसी उत्पन्न होने वाली वस्तु से कार्य की उत्पत्ति मानी जायगी तो इससे अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी क्योंकि एक उत्पन्न वस्तु दूसरी उत्पन्न वस्तु के ऊपर; दूसरी उत्पन्न वस्तु, तीसरी उत्पन्न वस्तु के ऊपर आश्रित होगी तथा इस प्रकार क्रमेण अनवस्था दोष की प्राप्ति का प्रसंग अवश्य उपस्थित हो जायगा।12

यदि संसार की वस्तुओं को हेतु–फल की श्रृंखला में आबद्ध कर दिया जाय तो हमारे समक्ष दो प्रकार के विकल्प उपस्थित होंगे : प्रथम विकल्प में

हेतु–फल के बीच पौर्वापर्य सम्बन्ध की कल्पना करनी पड़ेगी, अथवा द्वितीय विकल्प में दोनों को युगपद् मानना पड़ेगा। यदि दोनों के बीच पौर्वापर्य सम्बन्ध मान लिया जाय तो इसका अनुसंधान करना कठिन है कि कौन पहले आता है और कौन बाद में आता है। जिस प्रकार बीज–वृक्ष के बीच निश्चय करना कठिन है कि बीज पहले आता है कि वृक्ष, उसी प्रकार हेतु–फल के बीच भी पूर्वापर–क्रम का निर्णय करना कठिन है।13 यदि यह कहा जाय कि हेतु, फल पर आश्रित है और फल, हेतु पर आश्रित है तो इसका परिणाम यह होगा कि पिता पुत्र को उत्पन्न करता है और पुत्र पिता को उत्पन्न करता है जो असम्भव है।14 पुनः यदि यह कहा जाय कि हेतु–फल युगपद् होते हैं तो ऐसा असम्भव है क्योंकि ऐसा होने पर एक बैल की दो सींगों के बीच कारण–कार्य सम्बन्ध की कल्पना करनी पड़ेगी।15

अजातिवाद को सिद्ध करने के लिए गौडपाद ने एक अन्य तार्किक आधार भी प्रस्तुत किया है। प्रायः कार्य–कारण के सम्बन्ध में चार प्रकार के मत प्रतिपादित किये जाते हैं–

(i) असत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति।
(ii) असत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति।
(iii) सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति।
(iv) सत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति।

इनका तार्किक विवेचन करने पर स्पष्ट होता है कि प्रथम विकल्प युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि शशश्रृंग से आकाश–कुसुम की उत्पत्ति कहीं भी दिखाई नहीं देती। असत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति भी असम्भव है क्योंकि शशश्रृंग से घटादि की उत्पत्ति असम्भव है। सत् कारण से सत्कार्य की उत्पत्ति भी असम्भव है क्योंकि जो पहले से ही सत् है, उसकी उत्पत्ति का कोई प्रयोजन ही नहीं है। सत् कारण का कार्य असत् भी नहीं है क्योंकि भाव से अभाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः विवेकियों की दृष्टि में किसी भी वस्तु का कारण–कार्यभाव निश्चित नहीं है।16

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर आचार्य गौडपाद का निष्कर्ष है कि यदि कारण–कार्य के पौर्वापर्य का हमें ज्ञान नहीं है तो यह हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता है। इससे क्रम का अन्यथाभाव उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था में यह कहना कठिन है कि कारण पूर्ववर्ती है अथवा कार्य परवर्ती है जो कारणता के लिए अत्यावश्यक है। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर गौडपाद अजातिवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए विवश हो जाते हैं।

## संकेत :–

1. न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किंचिन्न जायते।।
–माण्डूक्यकारिका, 3/48
2. न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यांनाप्यहेतुतः।
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावाःक्वचनकेचन।।
–मूलमाध्यमिककारिका 1/3
3. नैवाग्रं नावरं यस्य तस्य मध्यं कुतोभवेत्।
तस्मान्नात्रोपपद्यन्ते पूर्वापर सहक्रमाः।।
–मूलमाध्यमिककारिका 11/2
4. स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
–मुण्डकोपनिषद्, 2,1,2
5. जगन्नाम्ना न।
–योगवासिष्ठ, 3,7,40
6. तस्माद् राम जगन्नासीन्न चास्ति न भविष्यति।
–योगवासिष्ठ, 4,2,8
7. भूतं न जायते किंचिदभूतं नैव जायते।
विवदन्तोऽद्वया ह्येवम् अजातिं ख्यापयन्ति ते।। –माण्डूक्यकारिका, 4/4
8. स्वतो वा परतो वाऽपि न किंचिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वाऽपि न किंचिद्वस्तु जायते।।
–माण्डूक्यकारिका, 4/22
9. "वाचारम्भणम् विकारो नामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्"
–छान्दोग्य उप0 6,1,4
10. हेतुर्न जायतेऽनादेः फलं चापि स्वभावतः।
आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते।।
–माण्डूक्यकारिका, 4/23
11. नहि कुक्कुटया एकदेशः पच्यत एकदेशः प्रसवाय कल्प्यतें
माण्डूक्यकारिका,4/12,शांकरभाष्य
12. अजाद्वैजायते यस्य, दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै।
जाताश्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते।।
–माण्डूक्यकारिका, 4/13
13. यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः।
कतरत्पूर्व निष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया।।
–माण्डूक्यकारिका, 4/18

14. हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च।
तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा।।
—माण्डूक्यकारिका, 4/15

15. संभवे हेतुफलोरेषितव्यः क्रमस्त्वया ।
युगपत्संभवे यस्माद् सम्बन्धो विषाणवत्।।
—माण्डूक्यकारिका, 4/16

16. नास्त्यसद्धेतुकमसत्सद्सद्धेतुकं तथा ।
सच्च सद्धेतुकं नास्ति द्धेतुकमसत्कुतः।।
—माण्डूक्यकारिका, 4/40

## सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

1. माण्डूक्यकारिका
2. माण्डूक्योपनिषद्
3. मूलमाध्यमिककारिका
4. अद्वैतवेदान्त
— शर्मा डॉ0 राममूर्ति
5. अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका — श्रीवास्तव, जे0 एस0, अद्वैत

*****